पहचान बनाम विकास की राजनीति : वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य के सन्दर्भ में।

डॉ0 अनिल कुमार

राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग,

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय में सहायक अतिथि आचार्य के पद पर कार्यरत हैं।

ईमेलः ***kumaranil1100@gmail.com***

सारॉश

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाज के विभिन्न वर्गो एवं समाज के कमजोर/निर्बल व्यक्तियों के लिए समानता हेतु राजनीति एक मुख्य साधन की तरह से स्थापित है। राजनीति से जहाँ एक तरफ शक्तिमान और सबल होता जा रहा है, तो वहीं पर धीरे–धीरे ही सही समाज के कमजोर वर्गो में भी नई राजनीतिक चेतना का संचार देखने को मिल रहा है, क्योंकि राजनीति के अन्तर्गत विभिन्न कारकों जैसे जातीय, धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीयता, अस्मिता, पहचान एवं विकास आदि का प्रयोग विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अपने–अपने तरीके से प्रयोग किया जाता रहा है, जिनका अपना एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से लेखक द्वारा पहचान एवं विकास के मुद्दों एवं विभिन्न आयामों का उल्लेख करते हुए इनके बीच परस्पर सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। इस लेख में लेखक ने भारत के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को समझने का प्रयास किया है। जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आम चुनाव ***2014***, दिल्ली विधानसभा चुनाव ***2015***, बिहार विधानसभा चुनाव ***2015ए*** उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव ***2017*** आदि को वस्तुतः सम्मिलित किया गया है। अन्त में लेखक ने मतदाताओं के मतदान व्यवहार का आकलन करते हुए विभिन्न प्रकार के राजनीतिक सुधारों को सुझाव के रूप में समावेशित करने का प्रयास किया है।

परिचय

भारत में पहचान बनाम विकास की राजनीति वर्तमान में भारतीय राजनीति के प्रमुख निर्धारक कारकों में से एक है। जहाँ तक पहचान की बात है, जब कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह व समुदाय स्वयं को समझने का प्रयास करता है, तो वह सर्वप्रथम देखता है, कि उसका जन्म किस परिवार, जाति, धर्म व भाषायी प्रान्त में हुआ है। तब उसे मालूम पड़ता है, कि इसे बदला नहीं जा सकता और यही उसकी पहचान धीरे–धीरे जब बौद्धिक ऐतिहासिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक संरचना का रूप ले लेती है। तब यह व्यक्ति व

समुदाय स्वयं को अपनी अस्मिता के आधार पर जब कृत संकल्पित होकर अन्य समुदायों के साथ अपने को व अपने जाति समुदाय की दूसरे के साथ तुलना करता है और वह उस समाज में अपने को उपेक्षित महसूस करता है। तब अपनी एक अलग पहचान बनाने का प्रयास करता है। दूसरे लोग भी उसे उसकी जातीय, भाषीय, धार्मिक व सामाजिक पहचान के आधार पर ही उसका संज्ञान लेते हैं।[1] और जब इसकी पहचान के पिछड़ेपन को आधार बनाकर समूह व समुदाय विशेष की राजनीतिक दलों द्वारा राजनीति की जाती हो तो, उसे हम 'पहचान की राजनीति' कहते हैं।[2]

राजनीतिक लाभ लेने का प्रयास किया जाता है। तो उसे हम विकास की राजनीति कहते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकास का आशय आर्थिक उन्नति से लगाया जाता था, जैंसे किसी देश में व्यापार बढ़ रहा है, व पैदावार निवेश अधिक हो रहा हो, तो इसे विकास कहा जा सकता है[4]। राजनीतिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी विकासशील देश की राज्य व्यवस्था विकसित समाज की विशेषताएँ अर्जित कर लेती है, उसे राजनीतिक विकास कहते हैं[5]।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हेराल्ड कुण्टज ने कहा है कि, "आर्थिक विकास के लिए ज़रूरी है, कि समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव खत्म हो, जमीन का समान वितरण हो शासक तथा शासित के भेद को खत्म किया जाय तथा समाज के कमजोर वर्ग को समाज की मुख्य धारा में लाया जाय, और उनके विकास का अवसर उपलब्ध कराया जाय, तो उसे हम विकास कहते हैं[6]।

पहचान की राजनीति

जब समाज के पिछड़े हुए व्यक्तियों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए उनका राजनीतिक रूप से ध्रुवीकरण किया जाता है, तो वहाँ पर पहचान की राजनीति जन्म लेती है। भारत में पहचान की राजनीति करीब दो दशक पूर्व राजनीतिक, सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन के रूप में मण्डल कमीशन के बाद दलित व पिछड़ी जातियों की अस्मिता को आधार बनाकर भारत में पहचान व जातीय अस्मिता की राजनीति किया जाता रहा है और इससे राजनीतिक दलों को सत्ता भी प्राप्त हुई है। वैसे भारत में 90 के दशक में मण्डल, मन्दिर और मार्केट को पहचान बनाकर जो राजनीति की गयी[7]। यहां से आप पहचान की राजनीति का व्यवहारिक रूप देख सकते हैं, क्योंकि यहाँ पर किसी व्यक्ति की पहचान उसके जाति, धर्म, भाषा, व्यवसाय व सम्प्रदाय के आधार पर की जाती है[8]। इसीलिए समाज में व्यक्तियो के अस्मिता का संकट देखने को मिलता है। जिसके कारण पहचान की राजनीति को बल मिलता है।

जबकि यहां के राजनीतिक दल उस विभाजित समाज के पिछड़ेपन को आधार बनाकर जातीय वर्ग, समूह व विशेष समूह के हितों की बात करके आंशिक रूप से राजनीतिक लाभ तो प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वे इसे अधिक दिनों तक बनाये नहीं रख सकते, क्योंकि जैंसे–जैंसे लोगों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ती जाती है वैसे–वैसे इन जातीय अस्मिता वाले लोंगों के सोचने व समझने में भी बदलाव आता है[9]। पहचान की राजनीति भी विकास की तरफ जाने के लिए प्रयास करती है। वर्तमान में पहचान बनान विकास की राजनीति भारतीय राजनीति के ज्वलन्त मुददों में से एक महत्वपूर्ण मुददा है, क्योंकि पहचान की राजनीति जहां किसी समुदाय विशेष के स्वतंत्र अस्तित्व को दर्शाती है तो वहीं पर दूसरी तरफ अन्य समुदायों के साथ उनकी भिन्नता को भी बताती है। यही जब स्वतंत्र अस्तित्व व भिन्नता एक दूसरे से भिन्नता को राजनीतिक दल, राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए उसका राजनीतीकरण करने का प्रयास करते

हैं, तो वहां से पहचान की राजनीति का प्रारम्भ होता है[10]।

पहचान आधारित राजनीति के प्रमुख लक्षण

जन्म आधारित सामाजिक पहचान व सदस्यता – किसी भी व्यक्ति व समुदाय के लिए पहचान स्वाभाविक होती है, इसे बदला नहीं जा सकता, क्योंकि जैसे–2 व्यक्ति की जातिगत पहचान वंश, सजातीयता, धर्म इत्यादि को हम जन्म आधारित पहचान के रूप में पाते हैं।[11] किन्तु भारत में तो हिन्दु सामाजिक व्यवस्था में एक व्यक्ति की जातीय पहचान उसके जन्म से ही निर्धारित होती है, जो अपरिवर्तनशील है। यदि उस व्यक्ति की परिस्थिति व भूमिका में चाहे जितना बदलाव आ जाय, किन्तु दूसरे लोग उसे उसके जातीय पहचान के आधार पर ही उसका संज्ञान लेते हैं। जैसे कोई निम्न समाज का व्यक्ति यदि राष्ट्रपति बन जाय या प्रधानमंत्री बन जाय या प्रधान न्यायधीश हो, तो उसके नाम के साथ भारत की मीडिया व समाज के अन्य लोग उसे प्रथम दलित/मुस्लिम राष्ट्रपति या दलित/मुस्लिम मुख्य न्यायधीश आदि नामों से संज्ञान लेते हैं, क्योंकि यह जन्म आधारित सामुदायिक पहचान को लोग उनके कहीं न कहीं जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि को अवश्य जोड़ देते हैं।

जबकि यह भी देखा जाता है, कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को लेकर कुछ प्रमुख अध्ययनों में यह बताने का भी प्रयास किया है, कि जातियों की पहचान भी समय के अनुसार बदलती रहती है, ऐसे विचारकों में प्रमुख – समाजशास्त्री एम.एन.श्रीनिवास ने अपने पेपर, 'द शोसल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया[12] में बताया है, कि जब निचली जातियों द्वारा अपने से ऊपर की जातियों के आचार–व्यवहार, खान–पान और पहचान का अनुकरण करते हुए सामाजिक प्रगति का प्रयास करती हैं, तो उसे उन्होनें सांस्कृतिकरण का नाम दिया है।[13] जबकि जी. बेरीमेन ने कहा है कि, 'यह सार्वभौमिक तथ्य है, कि सामाजिक व्यवस्था के स्तरीकरण में जब कोई भी मनुष्य या सामाजिक समूह अपने को निम्न नहीं रखना चाहता है, और वह अपने सामाजिक अपवर्जन और दोयम दर्जे में रखे जाने को अपनी राजनीतिक पहचान और चेतना से अपने को उच्च कोटि का बताने का प्रयास करता है और अपनी अस्मिता और विचारधारा के द्वारा अपने सामाजिक समूह की गतिशीलता और विकास को चाहता है तथा अपनी पहचान को राजनीतिक शक्ति और सामाजिक स्थित विकास के लिए उपयोगी मानता है (बेरीमैन,1972)।[14] जबकि किसी व्यक्ति के जन्म के बाद उसकी सामाजिक व राजनीतिक पहचान के रूप में जाति अभी भी सर्वप्रमुख घटक है। आज भारत में जाति की राजनीति ने पहचान की राजनीति को राजनीति के एक महत्वपूर्ण लाभदायक पक्ष के रूप में देखा जा रहा है। समकालीन भारत का आधुनिकता से साक्षात्कार वैश्वीकरण व नवउदारीकरण की घटनाओं में भारतीय राजनीति की दशा व दिशा के नये आयामों का निर्धारण किया है। कहीं–कहीं इसने व्यक्ति को इसकी जातिगत पहचान से उठाकर वर्गीय पहचान के रूप में बदलने का भी प्रयास किया है। भारत में दलीय व चुनावी राजनीति में आज जातिगत पहचान की केन्द्रीय भूमिका और अधिक मुखर हुई है[15]। दूसरी तरफ कहीं न कहीं परोक्ष रूप से व्यक्ति का जातिगत पहचान और भी मजबूत होती जा रही है। इसको रजनी कोठारी ने भारतीय राजनीति में जातियों की परस्पर औपबन्धिक अन्तःक्रिया सम्बन्धी प्रक्रिया का नाम दिया है। जबकि भारतीय राजनीति में आज जाति, व्यक्तिगत अस्मिता के निर्धारण के क्रम अपनी भूमिका को परंम्परागत आयामों से निकालकर उसके आधुनिक स्वरूप को ग्रहण करने की ओर निरंतर उन्मुख है[16]। जबकि एक फ्रेन्च विद्वान लुईस डयूमोट भारतीय जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'होमो

हायरारकिक्स' में इसे शुद्धता एवं प्रदूषण के रूप में दो विरोधाभाषी धारणाओं के रूप में चिन्हित करते हुए यह बताने का प्रयास किया है, कि भारतीय सांस्कृतिक पहचान पाश्चात्य सभ्यता के पहचान से अलग है[17]। उन्होंने भारत को एक स्थिति अपरिवर्तनशील एवं पुर्नदेशीय व ब्राहमणवादी मुल्कों के देश के रूप में पहचान किया है। जिसमें उन्होंने जातिवादी पहचान को महत्वपूर्ण बताया है, फिर भी उनका यह सिद्धांत समाज के अन्तर्गत सामाजिक परिवर्तन, गतिशीलता और समूहगत प्रभावों की व्याख्या करने में विफल रहा है।

वर्गीय पहचान आधारित राजनीति

भारतीय राजनीति में वर्ग अपेक्षाकृत एक नई संकल्पना है। सैद्धान्तिक रूप से वर्ग की दो प्रमुख अवधारणाएं पायी जाती है। जिसमें प्रथम मार्क्सवादी अवधारणा जिसे मार्क्स ने उत्पादन सम्बन्धों पर आधारित वर्गो के बीच शोषण व विरोधी सम्बन्धों के रूप में दिखाने का प्रयास किया । दूसरी अवधारणा के अन्तर्गत मैक्स वेबर ने वर्ग को सामाजिक स्तरीकरण के रूप में चिहिन्त किया है[18]। भारतीय परिप्रेक्ष्य में जाति एवं वर्ग परस्पर एक दूसरे के जुड़े होने के बावजूद सैद्धान्तिक भिन्नता लिए हुए हैं। जातियों के प्रमुख लक्षण के रूप में हम संगोत्र, सजातीय विवाह, व्यवसायिक मतभेद तथा व्यवसायिक वंशानुागत व व्यवसायिक विशिष्टीकरण एवं धार्मिक व्यवस्था है, जिसे सम्पत्ति, व्यवसाय और जीवन शैली के स्वामित्व के सन्दर्भ में पहचाना जा सकता है[19]। जिसमें सामान्यतः ब्राहम्ण व अन्य ऊँची जातियाँ उत्कृष्ट स्थिति में होती हैं, जो सामाजिक सम्मान और अस्मिता के सन्दर्भ में कर्मकांडी व्यवस्था से जुड़ी होती हैं। जबकि वहीं पर दूसरी तरफ वर्ग व्यापक रूप से स्वामित्व के आर्थिक आधार पर उत्पादन के साधनों पर गैर स्वामित्व का सन्दर्भ प्रस्तुत करता है। आज वर्ग भी अनेक उपवर्गो में विभाजत होता जा रहा है। अब वर्गीय स्थिति भी सामाजिक सम्मान के साथ जुड़ी हुए है। क्योंकि वर्गीय पहचान एवं हित अपेक्षाकृत अधिक मुक्त व सरल होते हैं। इनमें एक समूह के अर्द्धमुखी सामाजिक गतिशीलता की अधिक गुंजाइश होती है, तो वहीं पर कुछ विद्वानों ने वर्गो की संरचना को जाति के सन्दर्भ में और जाति की गतिशीलता को वर्ग के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। जैसे गेल आम्वेट ने भारतीय कृषक समाज के ऊपर अध्ययन करके बताया है, कि यहां की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषक वर्ग ही है जो राजनीति में एक महत्वपूर्ण रोल अदा कर रहा है[20]। जबकि डी.एल. सेठ ने सामाजिक स्तरीकरण से जुड़ने वाली जातियों के व्यक्तिगत सदस्यों से बने समूह को 'नये मध्य वर्ग' के रूप में पहचाना है[21]। आज भारत की राजनीति में भी समाज के मध्य वर्गो का बहुत बड़ा योगदान है, जो भारत में मध्य वर्ग की राजनीति को एक नई दिशा दे रहा है।

भाषायी पहचान आधारित राजनीति

भारत में पहचान एवं अस्मिता आधारित आन्दोलनों में भाषा पर आधारित पहचान का महत्व भी बढ़ रहा है। भारत की राज्यीय संरचना भी भाषा आधारित राज्यों के निर्माण का ही परिणाम है, जबकि 'भाषा' तो सिर्फ व्यक्ति के अभिव्यक्त का एक माध्यम होती है, किन्तु भारत में भाषायी राजनीति ने न केवल राज्यों का निर्माण किया है, बल्कि संघीय व्यवस्था के स्वरूप को भी प्रभावित किया है, जबकि कुछ राज्यों में तो राजनीतिक दलों के गठन का आधार भी भाषा ही है। आज भाषा के नाम पर विभिन्न भाषायी आन्दोलनों का प्रभाव भारतीय राजनीति पर स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है।

भारत में 1993 के राज्य पुनर्गठन आयोग के पश्चात आज भारत में भाषायी आधार पर 16 राज्य अस्तित्व में आये हैं। भाषायी समाधान के

लिए 'त्रिभाषा फार्मूला'[22] के बावजूद भी आज भाषायी पहचान के आधार पर ही आन्दोलन चल रहे हैं। फिर भी एक भाषायी आधार पर पुनर्गठित राज्यों में सकल सजातीय नहीं है, क्योंकि कुछ राज्यों में संख्या व राजनीति की दृष्टि से सशक्त अल्पसंख्यक हैं, तो कुछ में नृजातीय समूह भी पाये जा रहे हैं। सभी राज्यों का अपना निहित हित ही देखने को मिलता है। जिसके परिणाम स्वरूप राज्यों के बीच सीमा विवाद के लिए निरंतर संघर्ष भी चल रहा है जैंसे उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल के बीच, मणिपुर के कुछ भागों में नागालैण्ड का दावा ऐसे कई राज्यों के बीच सीमा विवाद भी चल रहा है।

समूचे भारत के लिए एक समान भाषा न होने के कारण भाषायी राज्यों की समस्याये व जटिलतायें दिनों व दिनों बढ़ती जा रही हैं, क्योंकि प्रत्येक राज्य में उनकी क्षेत्रीय भाषा ही वहां के लोगों के लिए शिक्षा और संचार का सशक्त माध्यम होती है और वहां की प्रत्येक जाति व समुदाय अपनी भाषा के प्रति लगाव व निष्ठा रखता है। यहीं से उसकी भाषा, राष्ट्र और राष्ट्रीयता के बाहर की अभिव्यक्ति होती है। जैसे उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोगों का गैर हिन्दी भाषी लोगों में नफरत का भाव व भाषायी आधार पर उनकी भावनाओं को भड़काने में क्षेत्रीय राजनेताओं का बहुत बड़ा हाथ होता है[23]। भाषा आधारित राष्ट्रीय पहचान एवं उसका निर्धारण भारतीय राजनीति में देखने को मिलती है। जैंसे महाराष्ट्र में मराठी भाषी लोगों और हिन्दी भाषी लोगों में संघर्ष देखते को मिल रहा है। जो सीधे–सीधे भारत के विविधता व बहुसंस्कृतवाद को भी चुनौती दे रहा है।

लैंगिक विभेद पर आधारित पहचान की राजनीति

भारत में लिंग पर आधारित भेदभाव, महिलाओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार यहाँ की सामाजिक व राजनीति व्यवस्था में पहले से विद्यमान है। महिलाएं आज भारत में ही नहीं बल्कि विश्व जनसंख्या की सर्वाधिक विवादगृस्त वर्ग हैं, क्योंकि यहां की परंम्परागत समाज पितृ सत्तात्मक ही रहा है। इसलिए वंश चलाने की इच्छा ने पित्तृ स्थानियता ;च्ंजतपसपदमंसपजलद्ध जहां वंश पुत्र के नाम से चलता है। जबकि महिलाओं के साथ भेदभाव सम्बन्धी प्रथाओं और परम्पराओं को भी सामाजिक वैधता प्राप्त हो, तो ऐसे देश में लैंगिक समानता अपने आप में समानता के लिए एक प्रश्न चिन्ह है?

समकालीन नारीवादी विचारक सिमॉन द बुवाँ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स 1949'[24] अपने ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला है, कि सम्पूर्ण मानव जीवन के इतिहास में महिलाओं को सदैव द्वितीय श्रेणी का ही स्थान प्राप्त हुआ है। जबकि पुरूष स्वयं प्रधान बना रहा है और वहीं पर स्त्रियों को निकृष्टतम व 'सेकेण्ड सेक्स' कह कर सम्बोधित किया जाता है। सिमॉन द बुवाँ ने कहा कि '**कोई महिला, महिला के रूप में पैदा नहीं होती बल्कि उसे महिला बनाया जाता है?**' इसके लिए उन्होने दो करकों को उत्तरदायी बताया है। जिसमें पहला – नेचर (प्रकृति को), जो प्राकृतिक स्वभाव पर आधारित है। दूसरा – कल्चर (संस्कृति) को बताया है[25]। भारत में महिलाओं को प्रारम्भ से ही राजनीतिक सांस्कृतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित रख गया है इस कारण आज भी परिवार से लेकर समाज तक उनके साथ लैंगिक विभेद के आधार पर पहचान की राजनीति को बढ़ावा दिया जाता है।

यद्यपि स्वतंत्रता के बाद लैंगिक विभेद को समाप्त करने के लिए बहुत सारे विधिक प्रावधान भारतीय संविधान में किये गये हैं। जबकि राजनीतिक अधिकारों के क्षेत्र में महिलाओं को

समान मताधिकार के रूप में स्वतंत्रता के पश्चात से ही मताधिकार प्राप्त हुआ है। जबकि पंचायत स्तर पर महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जा चुका है[26]। जबकि उनकी संसद में राजनीतिक भागीदारी व लैंगिक विभेद को समाप्त करने के लिए महिलाओं को आरक्षण दिया जाना उचित है। इसके साथ ही हमें उनके आर्थिक अधिकारों को भी सुनिश्चित करना पड़ेगा, जिससे वह लोकतांत्रिक रूप से अपने राजनीतिक अधिकारों को वास्तविक रूप में प्रयोग कर सके और अपनी पहचान को दर्शा सकें।

विकास

विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा संसाधनों का बेहतर प्रयोग किया जाता है, अर्थात दूसरे शब्दों में कहें तो मानव कल्याण को बढ़ावा ही विकास है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकास का मतलब – आर्थिक उन्नति से लगाया जाता है। जैसे यदि किसी देश का व्यापार बढ़ रहा है तो उस देश में पैदावार व निवेश भी बढ़ेगा और यदि यह सब बढ़ रहा है, तो उसे हम विकास[27] कहते हैं।

1955 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री 'हेराल्ड कुल्टज' ने कहा था, 'कि आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव खत्म किया जाना चाहिए' और समाज के कमजोर वर्गो को मुख्य धारा में लाया जाना चाहिए। जिससे उन्हें विकास का अवसर उपलब्ध कराया जा सके, जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक किसी भी देश का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है, जबकि इसका सीधा परिणाम विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन एक तरफ समाज में आर्थिक उन्नति तो बढ़ी है, वहीं पर दूसरी तरफ समाज में लोगों के बीच असमानता भी बढ़ती जा रही है।[28]

1970 के दशक में विकास की दूसरी परिभाषा आयी, जिसमें कहा गया, कि ऐसी राजनीतिक अर्थव्यवस्था अपनायी जाय जो सबके फायदे के लिए हो क्योंकि जिस देश में अधिकार, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और नागरिक समाज मजबूत होगा, वहां विकास अधिक होगा। अर्थात ऐसी राजनीतिक व्यवस्था अपनायी जाय जिसमें अधिकार स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र व नागरिक समाज की स्थापना किया जा सके। क्योंकि अधिकारों के विकेन्द्रीकरण के बिना कोई भी देश विकास नहीं कर सकता। 1997 में न्छक्ब और विश्व बैंक ने अपनी रिर्पोट में कहा है, कि जब 'सुशासन' होगा, तभी किसी देश का आर्थिक विकास हो सकता है। 1999 में विकास का एक नया अवधारणा (कान्सेप्ट) देखने को मिलता है, जिसमें कहा गया, कि पर्यावरण को संरक्षित करते हुए भविष्य की पीढ़ी को ध्यान में रखते हुए विकास किया जाय तो इसे सम्पोषित विकास कहते हैं।[29] 1990 के दशक में अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'डेवलपमेंट एज फ्रीडम' में कहा कि आर्थिक समृद्धि पर ज्यादा बल देने से वांछित जीवन जीने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। इस पुस्तक में अमर्त्य सेन ने स्वतंत्रता और विकास के बीच गहरे सम्बन्धों को दर्शाया है, जिसमें उन्होंने कहा है, कि एक व्यक्ति की स्वतंत्रता – विकास का साधन भी है, और साध्य भी है और यह तो मनुष्य की स्वतंत्रता को बढ़ाने व मजबूत करने वाली एक प्रक्रिया है।[30] इसमें उन्होंने बताया है, कि स्वतंत्रता दो प्रकार की होती है, एक–साधनकारी स्वतंत्रता, दूसरा–सारभूत स्वतंत्रता। जिसमें साधनकारी स्वतंत्रता के अन्तर्गत इन्होनें–स्वतंत्र अधिकारों, अवसरों, आश्वासनों व व्यक्ति की सुरक्षा को बताया हैं। जिसमें अधिकारों से आशय लोगों को यह तय करने का अधिकार मिले, कि कौन शासन करेगा? वहीं पर सारभूत सुविधा से तात्पर्य–उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग के लिए आर्थिक संसाधनों के प्रयोग के अधिकार से है। जबकि समान अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि की उन सामाजिक व्यवस्थाओं का पोषण जिससे लोगों का जीवनयापन बेहतर होता है। जिसमें आश्वासन से

हेरा फेरी, भ्रष्टाचार और वित्तीय उत्तरदायित्वहीनता से बचाव व सुरक्षा से तात्पर्य–अकाल या दूसरी महत्वपूर्ण अवस्थाओं में संरक्षण का आश्वासन से है। साधनकारी स्वतंत्रता से आशय – व्यक्ति की क्षमता बढ़ाने से है[31]।

इस प्रकार महबूब–उल–हक और अमर्त्य सेन जैसे अर्थशास्त्रियों ने विकास को मानव जीवन की गुणवत्ता के सुधार के रूप में परिभाषित किया है। जबकि सिंगापुर के पूर्व प्रधानमंत्री श्री कुओंग ने निरंकुशता को राजनीतिक व्यवस्था के विकास में बाधा बताया है।[32] 1990 में संयुक्त राष्ट्र ने विकास की अवधारणा में मुनष्य की क्षमता के साथ मानव विकास सूचकांक में शिक्षा, जीवन प्रत्याशा और स्वास्थ्य के साथ 1995 में लिंग सशक्तिकरण सूचकांक के साथ जोड़ा है। सम्पन्नता के स्तर की माप के लिए प्रति व्यक्ति आय के बजाय प्रति व्यक्ति क्रय शक्ति को आधार बनाया गया है। इससे यह सिद्ध होता है, कि सभी प्रकार की आय–विकास नहीं होती, बल्कि आप इसे विकास का साधन मानते है जो जीवन की गुणवत्ता को भी बढ़ाती है।

विकास के प्रमुख माँडल (प्रारूप)

उदारवादी विकास का बाजारवादी माडलः उदारवादी विकास के लिए बाजार (मार्केट) को केन्द्रीय तत्व मानता है। इसका विश्वास है, कि बाजार अर्थशास्त्र के अन्तर्गत अधिकतम आर्थिक कल्याण और विकास सम्भव है, जबकि राजनीतिक स्तर पर विकास का यह सिद्धान्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता, कानूनी समानता और उदार लोकतंत्र में विश्वास करता है। जिसमें आर्थिक स्तर पर व्यक्तिगत उपक्रम तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था इसके आधार है। वास्तव में विकास के 'मार्केट मॉडल' की मुख्य धारणा अहस्ताक्षेप और प्रतिस्पर्धा है, जंहा अहस्ताक्षेप का तत्व व्यक्ति की स्वतंत्रता को पुष्ट करता है, वहाँ पर यह आर्थिक व्यवस्था के लिए भी लाभकारी होता है। इस विकास के मॉडल का प्रतिपादन एडमस्मिथ के द्वारा हुआ, क्योंकि 1960 के बाद फ्रीडमैन, नॉजिक और हेयक ने भी 'मुक्त बाजार' का समर्थन किया है। इस तरह पराम्परागत (क्लासिकल) उदारवाद और नवउदारवाद दोनों ने ही विकास के 'मार्केट माडल' का समर्थन किया है[33]।

यह मॉडल जहॉ एक तरफ एकाधिकार व पूँजीवाद को बढ़ावा देता है, तो वहीं पर दूसरी तरफ इसने सामाजिक और आर्थिक समानता को भी उपेक्षित भी किया है। जबकि लोगों का यह मानना है, कि आर्थिक विकास से जो सम्पत्ति अर्जित होगी, वह सम्पत्ति रिसकर (छनकर) समाज के वंचित तबकों तक पहुँचेगी। लेकिन मार्केट मॉडल अपनाने वाले देशों में यह भी देखा गया है, कि सम्पत्ति और संवृद्धि वंचित और गरीबों तक नहीं पहुँच पायी इसलिए विकास का यह मार्केट मॉडल समावेशी विकास नहीं कर पाया। दूसरा यह औद्योगीकरण पर आधारित मॉडल होने के कारण इसने पर्यावरण असन्तुलन के पालन को भी उपेक्षित किया है। किन्तु इसे आज विश्व के अधिकतम देश अपना रहे हैं।

समाजवादी माँडल

जहाँ विकास का 'मार्केट मॉडल' अहस्तक्षेप और प्रतिस्पर्धा पर आधारित, तो वहीं पर विकास का समाजवादी माँडल नियोजन पर आधारित है, इसमें नियोजन और विकास के बीच सकारात्मक सम्बन्ध देखा गया है। लेकिन यह माँडल बाजार व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों का सार्वजनिक नियंत्रण करने लगता है, जिससे इसमें एकाधिकरवाद और भ्रष्ट निरंकुश नौकरशाही उभर कर सामने आती है। दूसरा इसमें आर्थिक असमानताओं को हटाने के नाम पर नागरिक स्वतंत्रताओं की अपेक्षा की जाती है[34]।

कल्याणकारी माँडल

विकास का कल्याणकारी मॉडल लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किये गये हस्ताक्षेप को विकास से जोड़ता है, इसके समर्थकों में कीन्स प्रमुख हैं।

गाँधीवादी माँडल

गाँधीवादी चिन्तन में विकास की संकल्पना दूसरे सभी माँडलों से भिन्न है, क्योंकि इसमें विकास को केवल भौतिक सम्पन्नता के रूप में ही नहीं देखा जाता, बल्कि इसे विकास के नैतिक सदगुणों' की उपलब्धि से जोड़ा गया है। गाँधी जी के लिए सर्वोदय का अर्थ सबके उदय से है, अर्थात गाँधी जी कहते थे, कि सर्वोदय से जहाँ समाज के उच्च वर्ग का नैतिक व आध्यात्मिक कल्याण होगा, तो वंही पर समाज के निम्न वर्गों का आर्थिक कल्याण होगा, अर्थात सबका उदय ही सर्वोदय है। गाँधी जी ने औद्योगीकरण को नकारा और विकेन्द्रीयकरण व ग्राम पंचायतों के माध्यम से विकास करने की बात की है[35]।

उपरोक्त सभी माँडलों की अपेक्षा अमर्त्य सेन जैंसे दूसरे अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत माँडल स्वीकार किया जा रहा है, क्योंकि उन्होंने विकास को जीवन की गुणवत्ता से जोड़ते हुए बाजार व राज्य की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति तक राज्य का हस्ताक्षेप और औद्योगीकरण के साथ–साथ ग्रामीण विकास को भी स्वीकार किया है।

आज भूटान ने अपने सकल घरेलू उत्पाद की जगह सकल राष्ट्रीय खुशी ;ळछभ्द्ध को विकास के माप की एक नई अवधारणा को विकसित किया है[36]। जबकि समकालीन विश्व में आज विकास, समाज और पर्यावरण के बीच दो प्रकार के तनाव उभरकर सामने आये हैं। जिसमें पहला– विकास और समाज के बीच का तनाव, दूसरा– विकास और पर्यावरण के बीच भी दो प्रश्न दिखाई देता है ;प्द्ध आर्थिक विकास समाज के सभी लोगों तक न पहुँच पाने का तनाव, ;प्प्द्ध विकास की सर्वाधिक कीमत गरीबों या वंचितों के द्वारा दिये जाने का तनाव। जिसमें पहले तनाव का समाधान समावेशी विकास के द्वारा दूर किया जा सकता है। दूसरा पर्यावरणीय कारणों जैसे 'ग्लोबल वार्मिंग' के रूप में उभर कर सामने आता है, जिसका प्रभाव समाज के सबसे कमजोर लोगों पर ज्यादा दिखाई देता है।

पहचान के मूलभूत तत्व

किसी भी व्यक्ति की पहचान जहाँ एक ओर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को किसी समुदाय विशेष में अवस्थित करता है, तो वहीं पर दूसरी तरफ यह दूसरे समुदायों के साथ भिन्नता को भी दर्शाता है। किसी भी व्यक्ति की समुदायिक पहचान व सदस्यता का निर्धारण चार प्रकार से होता है। जिसमें सर्वप्रथम – जन्म आधारित सामुदायिक या सदस्यता के द्वारा – क्योंकि यह पहचान स्वाभावित होती है और इसे बदला नही जा सकता। यह मुख्य रूप से उस व्यक्ति की जातिगत पहचान – वंश, सजातीयता, धार्मिक इत्यादि पहचान के रूप में दिखाई पड़ता है[37]।

दूसरा–परिस्थिति एवं बाहरी कारक जो व्यक्ति के पहचान को प्रभावित एवं निर्धारित करते हैं क्योंकि किसी व्यक्ति का अस्तित्व देश–काल सापेक्ष होता है एवं उसका महत्व, समय व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। तीसरा–किसी व्यक्ति की सामुदायिक पहचान एवं उसकी सामूहिक चेतना उस चेतना का स्तर व दूसरे समुदायों के साथ उसका सम्पर्क तथा उनसे उसकी सन्लिप्तता एवं अलगाव से निर्धारित होता है।

अन्तिम तौर पर किसी व्यक्ति की पहचान कुछ अर्थो में स्वैच्छिक चयनों से भी निर्धारित होता है, जैसे किसी विशेष व्यवसाय का चयन, व्यक्ति के व्यक्तिगत निर्णय एवं चयन के उपलब्ध

विकल्पों पर आधारित होता है, यह व्यक्ति के स्वयं के निर्मित सीमाओं के परे भी चला जाता है। किसी भी मानव समाज में बदलाव एवं उसकी गति, उसकी सीमा का निर्धारण सामाजिक समूहों और व्यक्तियों का उसकी राजनैतिक व्यवस्था से लाभ उठाने तक कि भिन्न–भिन्न क्षमता व असमानता से निर्धारित होती है[38]।

पहचान एवं विकास की राजनीति में सम्बन्ध

पहचान बनाम विकास की राजनीति में मण्डल, मंदिर और मार्केट का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है।[39] 1980 के दशक में पहचान की राजनीति स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है, जो एक सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन एक आन्दोलन के रूप में 1990 में विश्वनाथ प्रताप सिंह ने बतौर प्रधानमंत्री लोकसभा में वी.पी. मण्डल आयोग की अनुशंसाओं को लागू करने का फैसला लिया, तभी से भारत की राजनीति में प्रतिस्पर्धा के केन्द्र के रूप में जातियां आ गयी है। इसमें सामाजिक व शैक्षाणिक रूप से पिछड़े वर्गो के लिए केन्द्र सरकार की सेवाओं में पहली बार विशेष अवसर संवैधानिक प्रावधानों के तहत आरक्षण दिया गया। तभी से भारत की राजनीति में पहचान की राजनीति का व्यवहारिक रूप देखने को मिलता है।[40] मण्डल कमीशन के लागू करने के बाद भारतीय जनता पार्टी ने विश्वनाथ प्रताप सिंह से अपना समर्थन वापस लेकर पार्टी के अध्यक्ष लाल कृष्ण आडवाणी अयोध्या के लिए राम रथ यात्रा पर निकल पड़े। यहां पर इन्होंने मण्डलीकरण की राजनीति का जवाब कमण्डल से देने का प्रयास किया, क्योंकि भाजपा का वैचारिक सम्बन्ध संघ के साथ–साथ हिन्दू राष्ट्र में भी यकीन करता है। मण्डल कमीशन के अनुशंसा लागू होने के बाद पिछड़े वर्गो की सरकारी सेवाओं में हिस्सेदारी बढ़ने से हिन्दूत्व की एकता व वर्चस्व के सामाजिक आधार को जर्बदस्त धक्का लगा। इससे पूर्व बिहार में जब 1978 में कर्पूरी ठाकुर ने मुँगेरीलाल आयोग की अनुशंसा के अनुसार पिछड़े वर्गो के लिए प्रदेश की सरकारी सेवाओं में आरक्षण लागू करने का फैसला किया, तब भी जनता पार्टी में शामिल जनसंघ (भाजपा की पहली पहचान) ने कर्पूरी ठाकुर से भी अपना समर्थन वापस लेकर गिरा दिया था। यहाँ से मण्डल, कमण्डल और मन्दिर की राजनीति देखने को मिलता है।[41]

बाजार (मार्केट) की राजनीति भारत में 1990 के दशक में देखने को मिलती है। भारत में विकास की राजनीति के तहत पी.वी.नरसिंहराव सरकार के द्वारा उदारीकरण की नीति को एक माडल के रूप में स्वीकार किया गया, तभी से भारत के राज्यों में भी आर्थिक विकास की राजनीति पर भिन्नता देखने को मिलती है।[42] भारत में जहाँ गुजरात, केरल, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु में आर्थिक समृद्धि देखने को मिलती है तो वहीं पर बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान में गिरावट देखने को मिलता है। यह भी निवेश और उत्पादकता में भिन्नता के कारण ही है। तब से लेकर आज तक राज्यों के विकास का बाजारवादी मॉडल देखने को मिलता है, क्योंकि बाजारवाद जहाँ एक तरफ राज्य के अहस्ताक्षेप की नीति को अपनाता है, वहीं पर खुली प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ावा देता है। यह बाजारवादी दृष्टिकोण भी बाजारवाद से ही प्रेरणा लेता है। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज राज्य सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण करके सब्सिडी में कटौती भी कर रहा है, मूल्य निर्धारण में हस्ताक्षेप बढ़ता जा रहा है। जिसके माध्यम से विदेशी पूँजी निवेशकों को आमंत्रित करने का कार्य किया जा रहा है, आज मार्केट राजनीति को एक नई दिशा दे रहा है।[43]

योगेन्द्र यादव, सुहास पालिशकर ने अपने मौलिक लेख 'फ्राम हेजीमोनी टू कन्वर्जेन्सः पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द

इण्डियन स्टेटस 1952–2002' में भारतीय राजनीति में 50 वर्षो के दौरान आये महत्वपूर्ण बदलावों को रेखांकित किया है। जिसमें उन्होंने बताया है कि अब राज्यों की राजनीति भारतीय राष्ट्रीय राजनीति की मात्र संस्करण न होकर एक स्वतंत्र संस्करण के रूप में उभरी है। दूसरा– दलीय व्यवस्था में कॉंग्रेस सिस्टम का अन्त होकर एक नवीन दलीय व्यवस्था देखने को मिल रही है, जिसे बहुदलीय व्यवस्था कहते हैं। इस बहुदलीय व्यवस्था के उदय में मन्दिर, मण्डल और मार्केट का बड़ा योगदान रहा है। इसने पहचान बनाम विकास की राजनीति को एक नया आयाम दिया है।[44]

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य व विकास मॉंडल व राश्ट्रीय आम चुनाव 2014

भारत की राजनीतिक व्यवस्था में 1980 के दशक से ही प्रभावी होने वाली पहचान की राजनीति व इससे पूर्व 59 सालों से देश का एक राजनैतिक वर्ग जो जाति, समुदाय व धर्मनिरपेक्षता के मॉडल का खेल खेल रहा था। सन् 2014 के राष्ट्रीय आम चुनाव में भारतीय लोकतंत्र में राष्ट्रीय स्तर पर इसका विकास बनाम उसका विकास मॉडल चुनाव का मुख्यमुद्दा बना, जिसने लगभग कई दशकों से चली आ रही पहचान की राजनीति का स्थान विकास और सुशासन ने लिया है।[45]

किन्तु जब हम मोदी के गुजरात विकास मॉडल व मोदी लहर की बात करें तो हमें इससे पूर्व भारत में चले भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन के माध्यम से ही भारत के लोगों में एक व्यापक जन चेतना देखने को मिली थी। उसके बाद में इसी जन चेतना ने सत्ता विरोधी लहर के रूप में काम किया। जॅहा तक मोदी लहर की बात है, उस लहर में सोशल मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है,[46] इसके साथ ही कॉंग्रेस के खिलाफ बना भ्रष्टाचार विरोधी माहौल में सत्ता विरोधी लहर के रूप में कार्य किया, जिसके उपरान्त विकास और सुशासन भारतीय राजनीति में एक मुद्दे के रूप में उभर कर आये।

गुजरात मॉंडल

जहाँ तक गुजरात के विकास मॉडल की बात है, तो गुजरात ने भी अपने विकास मॉडल के लिए 'ट्रिकल डाउन विकास मॉडल' को अपनाया है।[47] ट्रिकल डाउन से आशय– बढ़त ऊपर से है, अर्थात बाजार प्रक्रिया के द्वारा अपने आप विकास प्रक्रिया से समृद्धि धीरे धीरे गरीबों तक पहुँचेगी। लेकिन यदि देखे तो गुजरात कोई अकेले विकास का मॉडल, पूरे भारत के लिए नहीं हो सकता, क्योंकि भारत की सामाजिक संरचना बहुसंस्कृतवादी है। यदि हम गुजरात की जनसंख्या को देखें तो, गुजरात की आबादी मात्र 6 करोड़ है, जबकि भारत की आबादी इससे कई गुना अधिक है। 2011 की न्छक्च द्वारा जारी रिपोर्ट में मानव विकास सूचकॉक में गुजरात का स्थान 0.514 के साथ 8वें स्थान पर है। जबकि केरल 0.625 के साथ पहले स्थान पर है, और इसके साथ ही भारत के अन्य राज्यों जैसे पँजाब, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, तमिलनाडु, उत्तराखण्ड आदि सभी राज्य गुजरात से भी आगे हैं।[48] यदि हम राज्यों के पिछड़ेपन पर जारी रघुरामन राजन रिपोर्ट में तमिलनाडु को देश के सर्वाधिक तीन विकसित राज्यों में सर्वोच्च स्थान दिया है[49], क्योंकि तमिलनाडु लैंगिक अनुपात के मामले में भी प्रति हजार पुरूषों पर 995 महिलाएँ हैं, जबकि गुजरात में केवल 918 महिलायें हैं। तमिलनाडु भारत के राज्यों में महाराष्ट्र के बाद दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था (2011–12) वाला राज्य है, और सबसे अधिक 49ः शहरीकृत लोग तमिलनाडु में रहते हैं। जबकि देश की शहरी जनसंख्या का 9.6ः हिस्सा यहाँ पर बसता है। गुजरात सिर्फ कन्या भ्रूण हत्या, कन्या मृत्यु दर, शिक्षा, स्वास्थ्य व राज्यवार सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर के हिसाब से बिहार, आन्ध्रप्रदेश,

छत्तीसगढ़ व असम आदि राज्यों के प्रदर्शन के तुलना में अच्छा रहा है।[50] अब प्रश्न उठता है – कि गुजरात का विकास किसका विकास है? आप देख सकते हैं, कि गुजरात में सिर्फ कार्पोरेट घरानों व पूँजीपतियों का विकास है और गुजरात कानून व्यवस्था के मामले में भी वहाँ पर सर्वाधिकारवादी शासन ही रहा है। गुजरात ने निजी पूँजी निवेश को आकर्षित करने के लिए उद्योगपतियों के हित में कई नीतियों का निर्माण किया है, जैसे कि गुजरात भूमि के उदारीकरण की तरफ अग्रसर है। जिसमें भाजपा के शासन का कमाल नहीं बल्कि पहले से गुजरात की विशिष्टता का महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि राष्ट्रीय स्तर की असमानता 36: है। जबकि न्छक्च की रिपोर्ट के अनुसार गुजरात में 26: बच्चे आज भी कुपोषण के शिकार हैं, और लगभग एक तिहाई लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। उपभोग व्यय, गरीबी उन्मूलन व असमानता की समाप्ति के मामले में भी गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु से भी पीछे है।[51]

गुजरात में कृषि का विकास तो हो रहा है, पर कृषकों का विकास नहीं हुआ। आधारभूत संरचना का विकास भी सिर्फ व्यवसायियों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से ही किया जा रहा है, न कि आम लोगों के हित व आवश्यकता को ध्यान में रखकर। सभी लोगों में सन्तुलित विकास तथा सभी समूहों के समान विकास का अभाव है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में गम्भीर खामियाँ आज भी विद्यमान है। इस समय समाज का एक महत्वपूर्ण वर्ग राज्य को आरक्षण के नाम पर चुनौती पेश कर रहा है।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में पहचान बनाम विकास की राजनीति

दिल्ली विधानसभा चुनाव 2015 में सत्ता की प्राप्ति ने पहचान और विकास की राजनीति के लिए नये मापदण्ड निर्धारित कर दिये हैं, क्योंकि जो लोग अभी तक यह अनुभव करते थे, कि उनका विकास मॉडल सबसे अच्छा है और मीडिया उनके साथ है, सुशासन और विकास करना सिर्फ वही जानते हैं। लेकिन दिल्ली विधानसभा के चुनाव में कुल 70 सीटों में से जहाँ आम आदमी पार्टी को 67 सीट प्राप्त हुई, वहीं पर भाजपा को मात्र 3 सीटें, जबकि इससे पूर्व 2013 के चुनाव में भाजपा को 31 सीटें, और आम आदमी पार्टी को 28 सीटें, तथा काँग्रेस को 8 सीटें और जदयू–1, निर्दलीय–1, 1–सीट सिरोमणि अकाली दल को प्राप्त हुई थीं। किन्तु दिल्ली की जनता ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में एक नया बदलाव करके यह संकेत भी दे दिया है, कि यदि आप नहीं बदले, तो हम स्वयं आपको बदल देगें और भाजपा के सुशासन मॉडल को पूरी तरह से नकार दिया।[52]

जबकि भाजपा के पराजित होने के कारको को यदि हम विस्तारपूर्वक देखें तो, इस चुनाव में भाजपा ने अपने विकास एजेण्डे से अलग हटकर घर वापसी, साम्प्रदायिकता व लव–जेहाद जैसे मुददों को जनता ने पूरी तरह से खारिज कर दिया और केजरीवाल के 49 दिनों के शासन को पुनः अवसर देकर भारतीय राजनीतिक दलों के लिए एक चुनौती पेश की है, जो अपने आप में महत्वपूर्ण है। इससे लगता है, कि भारतीय मतदाताओं के मतदान व्यवहार व लोकतंत्र के पैरामीटर में दिल्ली की जनता के माध्यम से अब एक नया ट्रेन्ड देखने को मिल रहा है।

लेकिन देखने की बात यह होगी, कि बिहार में जो नीतीश सरकार भाजपा के साथ मिलकर सुशासन के बल पर जंगलराज के विरूद्ध सत्ता में आयी थी(शशिबाला गुप्ता)[53], किन्तु आज उसी जंगलराज के पोषक रहे लालू प्रसाद यादव के साथ मिलकर भाजपा गठबंधन के विरूद्ध पुनः विकास व सुशासन से पहचान की राजनीति की तरफ दिनोदिन बढ़ रहा है। क्योंकि

बिहार का चुनाव अब मण्डल–2 बनाम कमण्डल–2 की राजनीति कर रही है। (अनिल)[54] इस मण्डल–2 में जहाँ नीतीश व लालू मिलकर चुनाव लड़ रहे हैं, वही पर भारतीय जनता पार्टी कमण्डल–2 का बिहारी संस्करण तैयार करने की कोशिश कर रही है। इस संस्करण में कमण्डल वादियों ने एक नया सामाजिक समीकरण सामाजिक अभियाँत्रिकी (सोशल इंजीनियरिंग) का फार्मूला इजाद किया है(दुसाध)[55], जिसमें भाजपा अपने साथ जीतन राम मॉझी और रामविलास पासवान जैसे दलित नेताओं को साथ लाकर मण्डल–2 को जंगलराज–2 के रूप में दिखाने का प्रयास कर रही है। जबकि दूसरी तरफ मण्डलवाद की राजनीति के विस्तार के बीच बिखरे नीतीश कुमार व लालू प्रसाद ने अपने अस्तित्व के लिए फिर से काँग्रेस के साथ मिलकर मण्डल–2 के अहमियत पर जोर देना शुरू कर दिया है। बिहार में पहचान की राजनीति को बनाये रखने के लिए आंन्ध्रप्रदेश के मुस्लिम नेता अकबरूद्दीन ओवेसी ने बिहार के सीमावर्ती जिलों में अपने उम्मीदवार खड़ा करने का ऐलान किया है। (स्वप्न दास गुप्ता)[56] जबकि इससे पूर्व उन्हें महाराष्ट्र में पहचान की राजनीति में सफलता मिल चुकी है।

लेकिन भाजपा की यह कोशिश है, कि मुस्लिम वोटों को किस प्रकार से बाँटा जा सके, जिससे मण्डल और मुस्लिम वोट एक धुरी न बन पाये, इसका प्रयास पूरी मजबूती के साथ भाजपा कर रही है। मोदी आरक्षण बनाम बिहार में आधुनिक लोकतंत्र के आधार में सामाजिक ढॉचे का प्रश्न जिस प्रकार से सन् 1974 में इन्दिरा गाँधी के खिलाफ बिहार में उठा था, जबकि 1971–72 के आम चुनाव में इन्दिरा गाँधी जिस महान नायक के अन्दाज में उठी थीं, उनका पतन इतने शर्मनाक रूप में होगा, उस समय उसे कोई सोच नहीं सकता था। जबकि उस समय उनके पास नरेन्द्र मोदी से भी ज्यादा उपलब्धियाँ थी, जैंसे कि उन्होनें उस समय पाकिस्तान के दो टूकड़े करा दिये थे, दूसरी तरफ उन्होंने अमरीकी जहाजी बेड़े को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया था, और पोखरण में पहली बार परमाणु विस्फोट कराकर भारत को आणविक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया था। घरेलू स्तर पर गरीबों और दलितों के लिए महत्वपूर्ण कार्य भी कराये थे। लेकिन इन सभी उपलब्धियों के बावजूद भी उनकी राजनीति बिहार में लड़खड़ा गयी और अन्ततः 1977 में काँग्रेस का बुरी तरह से पराजय का मुख देखना पड़ा।(जान हैरिस)[57] जबकि मोदी का मोदी मैजिक उनके सामने कहीं नहीं टिकता है।

बिहार विधानसभा चुनाव 2015[58]:

बिहार में दो चरणों के मतदान हो जाने के बाद बिहार विधानसभा चुनाव अभी तक सुशासन से जातीय पहचान की राजनीति की तरफ बढ़ता दिखायी दे रहा है, क्योंकि बिहार के चुनाव में विकास, गरीबी, किसानी, कानून व्यवस्था, शिक्षा और रोजगार जैसे मुद्दे गौण बने हुए हैं। अभी तक बिहार में तीन प्रकार की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ देखने को मिल रही हैं जिसमें पहली प्रवृत्ति – जातीय राजनीति का उभार, दूसरा–सोशल इंजीनियरिंग, तीसरा–समावेशी राजनीति, ये तीन प्रक्रियायें साथ–साथ चल रही हैं। भाजपा गठबंधन ने पूरी रणनीति के साथ टिकट वितरण में जातीय समीकरणों को प्रमुखतः दिया है। बिहार में भाजपा की चुनावी रणनीति में विकास ही एकमात्र मुद्दा नहीं है, बल्कि जातीय गणित और माइक्रो सोशल इंजीनियरिंग के माध्यम से समावेशी राजनीति को महत्व दिया गया है। जिसमें भाजपा ने 160 सीटों में 65 सवर्ण, 22 यादव, 33 अत्यन्त पिछड़े वर्ग, 12 महादलित व आदिवासी, 10 पासवान, 6 कुशवाहा, 4 कुर्मी और 2 मुस्लिमों को टिकट दिया है। इस प्रकार से टिकट वितरण में भाजपा ने जातीय संतुलन बनाने के साथ–साथ सबका साथ और

सबके विकास के माध्यम से समावेशी राजनीति अपनाने का सशक्त प्रयास किया है। जबकि वहीं पर लालू–नीतीश व कॉंग्रेस महागठबंधन ने 243 में से लगभग 97 सीटें केवल यादव और मुस्लिम वर्ग को आवंटित कर यह संदेश देने की कोशिश की है, कि वे अभी भी इन्हीं दो सामाजिक वर्गो को ही अपना प्रमुख जनाधार मानते हैं। यद्यपि इसके साथ ही उन्होंने 16 कुर्मी और 40 सर्वाधिक पिडछे वर्ग को सीटें दी हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने बिहार की परम्परागत चुनाव शैली को चुनौती देते हुए सबका साथ सबके विकास का आहवान इस पहचान की राजनीति के आधार पर लड़े जाने वाले चुनाव में किया है। उन्होंने चुनाव को विकास केन्द्रित बनाने का प्रयास किया है। डा. ए.के.वर्मा ने अपने सम्पादकीय लेख विकास और जाति की रणनीति (18 अक्टूबर, 2015) में यह प्रश्न किया है, कि सभी लोग सिर्फ मतदाताओं की अधिक से अधिक सहभागिता पर ही बल देते हैं। किन्तु सहभागिता के बाद यह नहीं सोचते कि आखिर करोगे क्या? देश में पोलीटिकल आडिट की न तो किसी ने कभी बात की है और न ही किसी ने कोशिश की है। अब देखना होगा, कि पहचान बनाम विकास की राजनीति कब तक देश को एक नई दिशा देती रहेगी? क्योंकि यदि कोई राजनीतिक पार्टी विकास व सुशासन के नाम पर जीतकर पुनः पहचान की राजनीति की तरफ बढ़ती है, तो इससे भारतीय राजनीति में लोगों के बीच संक्रमण की स्थिति बनी रहती है। जो अपने आप में स्वयं एक प्रश्न चिन्ह है? जो इस बिहार के विधानसभा चुनाव में अब भी बना हुआ है।

किन्तु आने वाल दिनों में यह देखना होगा, कि कॉंग्रेस कहाँ तक पुनः अपने को समायोजित करती है। किन्तु सभी राज्य दिल्ली भी नहीं हो सकते[59], क्योंकि दिल्ली में रहने वाले अधिकतम लोग बाहर से आकर यहाँ बसे हुए हैं, जबकि बिहार और उत्तर प्रदेश में जातीय ध्रुवीकरण व पहचान की राजनीति की तरफ देखने को मिल रहा है। वहीं पर पश्चिम बंगाल में साम्प्रदायिक बँटवारा हो रहा है, क्योंकि पश्चिम बंगाल की सामाजिक संरचना अन्य राज्यों से एकदम अलग है। जैंसे वहाँ एक बहुत बड़ी आबादी मुसलमानों की है, जिस पर भाजपा की नजर पश्चिम बंगाल के मुसमलानों पर लगातार बनी हुई है। दूसरी तरफ गुजरात में भी पहचान की राजनीति ने पुनः पटेल आरक्षण के माध्यम से भारतीय जनता पार्टी के सामने एक चुनौती पेश की है। अब यह पटेल समुदाय अपनी शक्ति का एहसास वर्तमान भाजपा सरकार को कराना चाहता है, और आज पटेल समाज नें भाजपा के सामने पहचान की राजनीति का एक नमूना पेश किया है।60 अब देखना होगा, कि भाजपा पहचान की राजनीति से कैसे निपटती है। इसके लिए प्रधानमंत्री मोदी को स्वंय स्पष्ट करना पड़ा कि उनकी सरकार आरक्षण खत्म करने नहीं जा रही है (12 अक्टूबर, 2015, मुंबई में डा0 अम्बेडकर स्मारक शिलान्यास के दौरान)। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि भाजपा ने भी पहचान की राजनीति को एक नये सामाजिक अभियॉंत्रिकी के मॉडल को अपनाया है।

उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2017[61]:

विविधता में एकता को समेटे हुए उत्तर प्रदेश भारत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य है। यह क्षेत्रीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ यहाँ की भाषा, संस्कृत, परम्परा, आवाम, यहाँ की राजनीति की वर्णमाला को परिभाषित करती है। यहाँ विकास का स्तर एक समान नहीं है। क्योंकि जहॉ पर एक तरफ पूर्वाचंल, बुन्देलखण्ड पिछड़े हुए हैं तो वहीं दूसरी तरफ पश्चिमी उत्तर प्रदेश विकसित है। उत्तर प्रदेश के साथ ही उत्तराखण्ड, पंजाब, गोवा और मणिपुर के विधानसभा चुनाव के परिणाम का आने वाले चुनावों व राष्ट्रीय राजनीति के लिए भी महत्वपूर्ण है। वैसे भारत के सभी राज्यों में चुनावों का अपना–अपना महत्व होता है, किन्तु उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव का महत्व

न केवल पूरे देश के लोग बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उत्सुकता व रूचि पैदा करते हैं। जनसंख्या के मामले में उत्तर प्रदेश यदि स्वतंत्र राष्ट्र होता तो यह चीन, भारत, अमेरिका और इण्डोनेशिया के बाद विश्व का पाँचवा सबसे बड़ा देश कहलाता। क्योंकि यह भी मान्यता है, कि दिल्ली (केन्द्र सरकार) का रास्ता उत्तर प्रदेश से होकर गुजरता है, अर्थात उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में जिस पार्टी की सरकार रहती है, वह केन्द्र की राजनीति में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

उत्तर प्रदेश का चुनाव भी एक प्रकार से पहचान बनाम विकास के आधार ही यहाँ के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों नये–नये गठबन्धन चुनाव पूर्व ही आपस में किये थे, जिसमें समाजवादी पार्टी का भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस के साथ भाजपा का अपना दल और सुहेलदेव भारत समाज पार्टी से गठबन्धन किया, वहीं पर बहुजन समाज पार्टी ने दलित–मुस्लिम नया गठजोड़ किया तो राष्ट्रीय लोकदल ने छोटे–छोटे राजनीतिक दलों के साथ गठजोड़ किया था। 2011 की जनगणना के आधार पर उत्तर प्रदेश की तस्वीर कुछ इस प्रकार से दिखायी पड़ती है। जिसमें पूरी आबादी में अन्य पिछड़ा वर्ग 34 प्रतिशत, यादव 9 प्रतिशत, दलित 20 प्रतिशत और मुस्लिम 19 प्रतिशत तथा शेष उच्च वर्ग जिसमें ब्राहमण, ठाकुर, बनिया 18 प्रतिशत हैं। यहाँ का चुनावी संघर्ष भी चुनाव के पूर्व त्रिकोणीय ही नजर आ रहा था, किन्तु 2017 विधानसभा के परिणाम बिल्कुल इसके विपरीत आये हैं। जो इस प्रकार हैं:–

उत्तर प्रदेश विधानसभा 2017 में कुल 403 सीटों पर चुनाव हुआ। जिसमें भाजपा गठबन्धन को 39.7 प्रतिशत मतों के साथ 312 सीटों पर विजय प्राप्त हुई, जबकि विपक्षी समाजवादी पार्टी को 21.8 प्रतिशत मतों के साथ 47 सीटें प्राप्त हुई तथा बसपा का वोट प्रतिशत 22.2 प्रतिशत (दूसरे स्थान पर) होने के बावजूद भी 19 सीटें ही प्राप्त कर सकी। जबकि कॉग्रेस को 6.3 प्रतिशत मतों के साथ केवल 7 सीटों पर ही संतोष करना पड़ा। जबकि रालोद सिर्फ 01 सीट ही जीत पायी।

इस प्रकार यदि हम 2012 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के परिणाम को देखें तो जिसमें कुल 403 सीटों में से सपा को 224 सीटें यानी 29.13 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे, जबकि विपक्षी बसपा को 25.9 प्रतिशत वोटों के साथ मात्र 80 सीटें प्राप्त हुई थीं जबकि भाजपा को 47 सीटों के साथ 15 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। वहीं पर कांग्रेस को 11.65 प्रतिशत मतों के साथ 28 सीटें प्राप्त हुई थीं। जबकि रालोद को 2.33 प्रतिशत के साथ कुल 9 सीटें प्राप्त हुई थी। उत्तराखंण्ड विधानसभा चुनाव 2017 में कुल 70 सीटों पर चुनाव हुआ। हुई। बीजेपी को 57 सीटें प्राप्त हुई जबकि विपक्षी कांग्रेस को 11 सीट और बसपा को कोई सीट नहीं प्राप्त हुई। वहीं पर 2 अन्य को मिली। जबकि पंजाब विधानसभा चुनाव 2017 में कुल 117 सीटों पर चुनाव हुआ जिसमें कांग्रेस को 77 सीटें प्राप्त हुई जबकि विपक्षी आम आदमी पार्टी को 20 सीटें और अकालीदल को मात्र 16 सीटें और भाजपा को 03 सीटों पर ही संतोष करना पड़ा और अन्य को 02 सीटें प्राप्त हुई। मणिपुर विधानसभा चुनाव 2017 कुल [60] सीटों में से कांग्रेस को 28 सीटें जबकि बीजेपी को 21 सीट और एन.पी.एफ. को मात्र 04 सीटें और एन.पी.पी. को 04 सीटें और 03 अन्य को प्राप्त हुई। जबकि गोवा में कुल 40 सीटों पर चुनाव हुआ जिसमें 17 सीटों पर कांग्रेज विजयी रही जबकि भाजपा को मात्र 13 सीटों पर और एम.जी.पी. को 03 सीटों पर और जी.एफ.पी. को 03 और अन्य को 04 सीटें प्राप्त हुई। इस प्रकार उपरोक्त पाँचों राज्यों के चुनाव परिणाम आने के बाद भाजपा को स्पष्ट बहुमत सिर्फ उत्तर प्रदेश व उत्तराखंण्ड में ही प्राप्त हुआ था। जबकि कांग्रेस को पंजाब में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ था

किन्तु कांग्रेस को मणिपुर व गोवा में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी फिरभी पूर्ण बहुमत की सरकार न बना सकी। क्योंकि बीजेपी की केन्द्र में सरकार होने के कारण बीजेपी ने जोड़–तोड़ करके अन्य दलों के सहयोग से गोवा व मणिपुर में अन्ततः अपनी सरकार बनायी। इस प्रकार उपरोक्त पाँचों राज्यों जिसमें विशेषकर उत्तर प्रदेश के चुनाव परिणामों से स्पष्ट होता है कि राजनीति विमर्श के मायने बदल गये हैं क्योंकि इस परिणाम ने यह बता दिया कि अब यदि राजनीति करनी है तो व्यवहारिक धरातल पर जाकर सीमित पहचान व जातीय राजनीति के बजाय सम्पूर्ण समाज की समावेशी राजनीति करनी होगी क्योंकि समावेशी राजनीति से ही परिवर्तन आता है और राजनीतिक गठबंधन समाज में ऊपर से नहीं बल्कि जनता के बीच जा कर करना होगा। क्योंकि यह चुनाव बता रहा है कि विकास की राजनीति को जनता ने समझा है। जनता अब यह चाह रही है कि राजनीति का आधार सैद्धान्तिक पहचान के बजाय व्यवहारिक विकास ही होना चाहिए वह भी बिना किसी भेदभाव के। इन पॉचों राज्यों के चुनाव परिणामों में जनता ने जातिवाद, परिवारवाद, गिफ्ट पालीटिक्स (तुष्टिकरण की नीति) छोटे राजनीतिक दलों के स्थान पर राष्ट्रीय दलों की राजनीति को पसन्द किया है क्योंकि ऐसे दल जो विकास व राष्ट्रवाद को महत्व देते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है, भारतीय राजनीति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत पहचान की राजनीति से आरम्भ होकर बाजारवादी विकास (मार्केट मॉडल) की राजनीति की तरफ बढ़ रही है। किन्तु फिर भी पहचान बनाम विकास व सुशासन की प्रक्रियायें पुनः साथ–साथ चल रही है, जैंसे बिहार और उत्तर प्रदेश। जबकि बिहार सुशासन की राजनीति से पहचान की राजनीति की तरफ पुनः बढ़ता हुआ नज़र आ रहा है, डा. ए. के. वर्मा का कहना है कि, "बिहार में जाति चुनाव में एक डामनेंट नेरेटिव रही है किन्तु कुछ अवसरों पर मतदाता को जब बेहतर विकल्प दिखायी देता है, तो उस जातीय पहचान वाली नेरेटिव से वह उभरना चाहता है।" मतदाताओं के इस बदलते हुए मतदान के व्यवहार को समझना बहुत जरूरी है। को क्योंकि इस समय बिहार विधानसभा चुनाव 2015, उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2017 उसके आगे 2018 में होने वाला पश्चिम बंगाल, गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान, तमिलनाडु का चुनाव भी महत्वपूर्ण होगा। ये सभी चुनाव आने वाले समय में पहचान और विकास की राजनीति के लिए राष्ट्रीय राजनीति के समक्ष एक नया आयाम प्रस्तुत करेगें? जबकि इससे पूर्व में दिल्ली विधानसभा का चुनाव तो विकास के मुद्दे पर ही लड़ा गया था, और इस दिल्ली विधानसभा चुनाव के माध्यम से हमारे देश की जनता ने हमारे राजनीतिक दलों को यह अवश्य बता दिया है, '**कि यदि आप नहीं बदले तो हम आपको स्वयं बदल देगें**'।

अन्ततः यह कहा जा सकता है, कि ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह व वर्ग जो विकसित हैं, वे सभी स्वयं को पहचान की राजनीति की अपेक्षा विकास की राजनीति से अपने को ऊपर रखते हैं। जबकि ऐसे लोग व समूह जो विकसित नहीं हुए हैं, वे लोग विकास की राजनीति को फलीभूत होते देखना चाहते हैं। भारत में ऐसे समूहों की अधिकता है, जो आज भी विकास की रेखा से कोषों दूर हैं। ऐसे में वह समूह विकास की राजनीति के लिए पहचान की राजनीति को दूरगामी परिदृश्य के रूप में देखता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि समाज का वह समूह जो विकास द्वारा पहचान पाने के लिए निरंतर प्रेरित है, उसके द्वारा की जाने वाली राजनीतिक को 'जनसमूह वाली राजनीति' के रूप में समझा जा सकता है। जबकि एक व्यक्ति की पहचान

केवल व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामूहिक गरिमा से भी सम्बन्धित है। भारत में वर्तमान राजनीति केवल पहचान व सीमित राजनीति पर ही केन्द्रित नहीं है बल्कि विकास व समावेशी राजनीति की तरफ बढ़ रही है। किन्तु जब तक समाज में लोग अपने को उपेक्षित पिछड़ा महसूस करते रहेगें तब तक पहचान की राजनीति होती रहेगी क्योंकि भारत की सामाजिक संरचना ही ऐसी है। आवश्यकता इस बात की है, कि पहचान और विकास दोनों को समायोजित करते हुए लोगों का सर्वांगीण व सतत विकास का मार्ग बिना किसी भेदभाव के प्रशस्त करना होगा। जिसे आप वर्तमान में भी देख सकते हैं। वर्तमान में गुजरात के पटेल समुदाय की राजनीति राजस्थान, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट आरक्षण की मांग पहचान की राजनीति का एक ज्वलंत उदाहरण है।

सुझाव

प्रत्येक राजनीतिक दलों को अपनी पार्टी में राजनीतिक विश्लेषक व राजनीतिक नियंत्रक का पद सृजित करना चाहिए जो मतदाताओं के बदलते हुए मतदान व्यवहार का समय–समय पर अध्ययन करें।

Copyright © 2017 *Dr. Anil Kumar*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

[1] रजनी कोठारी, (2010) 'भारत में राजनीति कल और आज', अनुवादक अभय कुमार,दुबे, वाणी प्रका'ku सी.एस.डी.एस दिल्ली, पृष्ठ 416

[1] उत्पल कुमार, (2013), 'बहुसंस्कृतवाद : असमिता एवं पहचान की राजनीति' सम्पादक एम.पी.सिंह व हिमां"ाु राय, 'भारतीय राजनीतिक प्रणाली' हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदे"ाालय, दिल्ली, पृष्ठ 512–513

[1] एम. एल. झिंगन, (2013), 'विकास का अर्थ"ाास्त्र एवं आयोजन', वृन्दा पब्लिके"ान प्रा.लि. दिल्ली, पृष्ठ 436–438

[1] वहीं

[1] ओ.पी. गावा, 'इन्साइकलोपीडिया आफ पोलिटिकल साइंस' ए मयूर पैपर बैक्स, नोएडा, उ0प्र0, पृष्ठ 576

[1] एम.एल. झिगन, (2013) 'विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन' वृन्दा पब्लिकेशन प्रा.लि. दिल्ली, पृष्ठ 446–448

[1] योगेन्द्र यादव व सुहास पालशिकर, 'फ्राम हेजीमोनी टू कन्वर्जेन्सः पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्टोरल पोलिटिक्स इन द इण्डियन स्टेट्स 1952–2002, ईकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली. दिल्ली

[1] अभय कुमार दुबे, 'लोकतंत्र के सात अध्याय', वाणी प्रकाशन, सी.एस.डी.एस., नई दिल्ली, पृष्ठ

9 उत्पल कुमार, (2013) 'बहुसंस्कृतिवाद, अस्मिता एवं पहचान की राजनीति', सम्पादक, एम.पी.सिंह व हिमांशु राय, 'भारतीय राजनीतिक प्रणाली' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, पृष्ठ–509–510

10 हैकमैन, सुजैन, (2000), बियाण्ड आइडेन्टिटीः फेमनिज्म आइडेन्टिटी एण्ड आइडेन्टिटी पोलिटिक्स, फेमनिस्ट थियरी वालयूम–1(3), अनुवादक चन्द्र''ोखर, सी.एस.डी.एस. शोधार्थी पत्रिका, कानपुर, अप्रैल–जून संस्करण, 2006, पृष्ठ 26–34
11 महेन्द्र प्रसाद सिंह व हिमां''ाु राय, (2013) 'भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना, नीति और विकास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदे''ालय, दिल्ली, पृष्ठ 509–510
12 एम.एन.श्रीनिवास, (1966)'द शोसल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया(बर्कले), केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ
13 अनिल कुमार वर्मा, (जनवरी 2010), 'शोधार्थी शब्दकोष' लोकनीति सी.एस.डी.एस. नई दिल्ली व कानपुर से सम्पादित, पेज 68

14 जी. बेरीमैन, (1972), सेल्फ, सेचुये''ान्स एण्ड स्केप फ्राम स्टिग्मेटाइज्ड, इथिनिक आइडेप्टिटी, सम्पादित, एल.एस.माथुर और एस.सी.वर्मा : मैन एण्ड सोसाइटी, लखनऊ इथ्नोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसाइटी, पृष्ठ–95
15 उत्पल कुमार, (2013), 'बहुसंस्कृतवाद – अस्मिता एवं पहचान की राजनीति, सम्पादक एम.पी.सिंह व हिमां''ाु राय, भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना नीति एवं विकास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदे''ालय, दिल्ली, पृष्ठ 513
16 लूइस डयूमोण्ट, (1979) होमो हायरारफिक्स : द कास्ट सिस्टम एण्ड इट्स इम्पलिके''ान्स, लंदन : विडेनफिल्ड एण्ड निकोलसन, 1970
17 एस.एल. दोषी व पी.सी.जैन (2010) 'सामाजिक विचारक', रावत पब्लिके''ान दिल्ली पृष्ठ 103, 394
18 ,म.एन.श्रीनिवास, (1982), 'आधुनिक भारत में समाज परिवर्तन जातियों का संस्कृतीकरण', नई दिल्ली

19 गेल आमवेट, (1989), 'क्लास, कास्ट एण्ड लैंड इन इण्डिया टचिंग पोलीटिक्स', डिपार्टमेंट आफ पोलिटिकल साइंस, दिल्ली वि''वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ 31–41
20 डी. एल. सेठ, (1999), 'कास्ट एण्ड द सेकुलराइजे''ान प्रासेस इन इण्डिया' "पीटर रोनाल्ड, डिसूजा कन्टेमपरेरी इण्डिया, नई दिल्ली सेज पब्लिके''ान, पृष्ठ – 238
21 भारत सरकार रिर्पोट आफ कमिश्नर आफ लाजिस्टिक माइनरटीज, 1973–77, पृष्ठ 189–199
22 सुजैन हैकमैन, (2000), 'बियाण्ड आइडेंटिटी, फेमनिजम आइडेंटिटी एण्ड आइडेंटिटी पालीटिक्स' फेमिनिस्ट थियरी वाल्यूम–1(3), पृष्ठ 289–308

23 अनिल कुमार वर्मा, (अक्टूबर 2010) शोधार्थी, त्रिमासिक शोध पत्रिका, लोकनीति सी.एल.डी.एस. नई दिल्ली, पृष्ठ–19
24 नरेश दाधीचि, (2015), 'समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त–एक परिचय' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 157
25 वही, पृष्ठ 157–158

26 ओम प्रका''ा गावा, (2008), 'राजनीति विज्ञान वि''वकोष', मयूर पेपर बैक्स प्रका''ान, नोयडा, उ0प्र0, पृष्ठ 196 व 208
27 एम.एल. झिगन, (2013) 'विकास का अर्थ''ाास्त्र एवं आयोजन', वृंदा पब्लिके''ान प्रा.लि., पृष्ठ 665
28 ब्रुटलैण्ड रिपोर्ट, (1987),

29 अमर्त्य सेन, (1999),'डेवलेपमेन्ट ऐज फ्रीडम', रेन्डम हाउस प्रा0 लि0, पृष्ठ
30 अमर्त्य सेन, (2010), 'डेवलेपमेन्ट ऐज फ्रीडम' अनुवाद भवानी शंकर (बांगला), 'आर्थिक विकास और स्वतन्त्रता', राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ–51 से 55
31 वही
32 वही

33 ओ.बी. गांवा, (2009), 'एन इन्ट्रोडक्शन टू पालीटिकल थियरी' मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 539–540
34 ओ.वी.गावा, (2008), 'राजनीति विज्ञान विश्वकोश', मयूर पेपर बैक्स, नोयडा, पेज 204–205

35 बी.बी.तायल, (2004), 'आधुनिक राजनीति सिद्धान्त', सुल्तान चन्द एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 358–359
36 Karmaura and Sabina Alkire Tshoki Zangmo. Karma Wangdi, (2012) *'A short guide to gross national happiness index'* published by The Center for Bhutan studies. Thimpu, Bhutan, PP 4-7

37 उत्पल कुमार, (2013), 'बहुसंस्कृतिवादः अस्मिता एवं पहचान की राजनीति', एम.पी.सिंह व हिमांशु राय, भारतीय राजनीति प्रणाली संरचना, नीति और विकास' हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 510

38 लुईस डयूमोण्ट, (1970), होमो हायरकिक्सः 'द कास्ट सिस्टम एण्ड इट्स इम्पलीके''न्स', लन्दन, विडेनफील्ड एण्ड निकोलस पब्लिके''न्स,
39 योगेन्द्र यादव एवं सुहास पालि''ाकर, (2003) 'फ्राम हैजेमनी टू कन्वर्जेन्स : पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्टोरल पालिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स', 1952–2002, पब्लि''ड फ्राम जनरल आफ इण्डियन स्कूल आफ पोलीटिकल इकोनामी, जनवरी/जून, 2003, वा0 नं0–15, नं0 1–2, अनुवादकः अनिल कुमार वर्मा, शोधार्थी, सी.एस.डी.एस. दिल्ली व कानपुर
40 सुरिन्दर एस. जोधका, (2014), 'कास्ट पोलिटिक्स', सम्पादक नीरजा गोपाल जयाल एवं प्रताप भानू मेहता, 'पोलिटिक्स इन इण्डिया' आक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 161–162

41 मण्डल–2 बनाम कमण्डल–2 का चुनाव : अनिल चमाड़िया, 'राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 05 सितम्बर, 2015, पेज–4
42 'संशय भरा है काँग्रेस का डेवलपमेंट माडल' : प्रमोद जोशी, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–1
43 *http:*en.www.samaylive.com, date 03 May, 2014
44 योगेन्द्र यादव एवं सुहास पालिशकर, (2003) 'कन्वर्जेन्स : पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्टोरल पालिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स', 1952–2002, शोधार्थी, सी.एस.डी.एस. दिल्ली व कानपुर, पृष्ठ

45 'दुश्वारियों से भरे हालात, मुफीद मॉडल का सवाल' 5 एन.के.सिंह, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–1
46 नवउदारवादी नीतियों की आर्थिक समीक्षा, (2012–13), नई दिल्ली
47 'मोदी लहर की असल कथा': सत्येन्द्र रंजन, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–3
48 देखें–राज्यों के पिछड़ेपर पर जारी रघुरामन रिपोर्ट व यू.एन.डी.पी. रिपोर्ट : 2011, मई, 2014
49 तमिलनाडु पहले से ही है अग्रणीः आर.सी.राजामणि, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–4
50 देखें–लुभाता, मनभाता गुजरात : सुरजीत एस भल्ला, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–3

51 आर्थिक नीतियों की उदारवादी समीक्षा : 2013–14,
52 दिल्ली ने चेताया नरेन्द्र मोदी को : जवाहर लाल कौल, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 14 फरवरी, 2015, पेज–3

53 बिहार सु''ाासन का नया ककहरा : सैबाल गुप्ता, राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 03 मई, 2014, पेज–4
54 मण्डल–2 बनाम कमण्डल–2 का चुनाव : अनिल चमाड़िया, 'राष्ट्रीय सहारा' (हस्ताक्षेप), लखनऊ 05 सितम्बर, 2015, पेज–4
55 मोदी की सो''ाल इंजीनियरिंग : एच.एल.दुसाध, दैनिक जागरण, 30 मई, 2014, सम्पादकीय पृष्ठ–10
56 ओवैसी के उभार का मतलब : स्वप्न दासगुप्ता, दैनिक जागरण, 20 सितम्बर, 2015, पेज–14

57 जॉन हैरिस, (2014),क्लास एण्ड पोलिटिक्स, सम्पादक नीरजा गोपाल जयाल एवं प्रताप भानू मेहता, 'पोलिटिक्स इन इण्डिया' आक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ–149
58 विकास और जाति की रणनीति : डा. ए. के. वर्मा, दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 18 अक्टूबर, 2015, पृष्ठ–26

59 थम गया विजय रक्ष : प्रदीप सिंह, दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 12 फरवरी, 2015, पृष्ठ–10
60 www.indiatodayhindi.in
61 विकास और जाति की रणनीति : डा. ए. के. वर्मा, दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 18 अक्टूबर, 2015, पृष्ठ–26